बीसवी सदी के अंतिम दशक के हिंदी उपन्यासों में अस्तित्ववाद

डॉ. सरिता बाबासाहेब बिडकर

सहाय्यक प्राध्यापक— हिंदी विभाग

डॉ. घाळी महाविदयालय, गडहिंग्लज. महाराष्ट्र

बीसवीं सदी के अंतिम दशक का कालचक्र मनुष्य की चेतना जागृति का दौर कहा जाए तो गलत नहीं होगा। अनेक विषयों को लेकर यह दशक काफी महत्वपूर्ण रहा है। वर्तमान परिवेश का यह निर्विवाद सत्य है कि पाश्चात्य संस्कृति ने भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया है। इक्कीसवीं सदी तक पहुँचते—पहुँचते अनेक प्राकृतिक प्रकोप एवं कृत्रिम संकटों के उथल—पुथल में मानव उलझ रहा है। वह अंदर से आहत हुआ है। लगता है अतीत उससे छूट गया और भविष्य में उसका विश्वास नहीं रहा है। स्वयं की सुरक्षा को लेकर वह चिंतित है। कोई भी सवाल उसे इस तरह खामोश कर देता है, मानो उसने आत्मविश्वास ही खो दिया हो। अत: हिंदी उपन्यासों ने उसे एक दिशा देने का महत्वपूर्ण काम किया है।

कहना गलत नहीं होगा कि अस्तित्वाद की शुरूआत ही मानव जीवन की विवश स्थिति तथा संघर्ष से होती है। अत: इतिहास गवा है कि किसी भी त्रासदी या समस्याओं से मानव जीवन विचलित हुआ है, तब साहित्य क्षेत्र में किसी—न—किसी विचारधारा ने जन्म लिया है। मानव को स्थिर बनाने के लिए औद्योगीकरण एवं विज्ञान की रफ्तार तेज हुई और मनुष्य की यह मजबुरी ही उसकी कमजोरी बन गई। इस बदलते हालात और परिस्थितियों ने 'अस्तित्ववाद' की प्रासंगिकता और एकबार स्पष्ट कर दी। अस्तित्वाद का प्रारंभ बीसवीं सदी से माना जाता है।''अस्तित्ववादी चिंतन की अधिकांश प्रवृत्तियॉं—बीसवीं शताब्दी के परिवेश की उपज है। उन्नीसवीं शताब्दी के चितंक कीर्केगार्ड ने औद्योगिक क्रांति के तत्काल पश्चात परंपरागत व्यवस्था में परिवर्तन की आकांक्षा व्यक्त की थी।'' १ अस्तित्ववाद विचारधारा का मूल स्त्रोत जर्मन दार्शनिक हाइडेगर और डेनिश चिंतक कीर्केगार्ड में उपलब्ध होता है। यह धारा परंपरागत मूल्यों को किनारे कर सशक्त मानवीय मूल्यों की स्थापना करती है।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में सुरेंद्र वर्मा का'मुझे चांद चाहिए' तथा 'दो मुर्दो के लिए गुलदस्ता,' चंद्रकांता का—अपने—अपने कोणार्क,' रूपसिंह चंदेल का'पाथरटिला,' मृदुला गर्ग का'कठगुलाब,'प्रतिभा जैन का'कठिन तपस्या,'प्रभा खेतान का'छिन्नमस्ता', मृणाल पांडे का 'रास्तों पर भटकते हुए,' मैत्रेयी पुष्पा का'चाक,' वीरेंद्र सक्सेना का'खराब मौसम के बावजूद,' नासिरा शर्मा का 'जिंदा मुहावरे,'' अमरनाथ शुक्ल का'अर्ध विराम', तेजिंदर का उस शहर तक'आदि उपन्यासों मे अस्तित्ववादी विचारधारा के दर्शन होते हैं। प्रस्तुत उपन्यासों में चित्रित पात्र अकेलापन आदि मानसिक स्थितियों से गुजरते हैं, जो अस्तित्वादी समस्याएँ मानी जाती हैं।

सुरेंद्र वर्मा का 'मुझे चॉद चाहिए' यह एक बहुचर्चित उपन्यास है,जिसमें अनेक समस्याएँ तथा अस्तित्ववादी विचारधारा देखने को मिलती है। अस्तित्वबोध का चिंतन प्रभावी रूप से इस उपन्यास में पाया जाता है। उपन्यास का प्रमुख पात्र वर्षा वशिष्ठ गो उपन्यास की नायिका है, उसका जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण है। कट्टर ब्राह्मणपंथीय परिवार में वर्षा का जन्म हुआ है। उसकी शिक्षा पर पाबंदी लगाना, परिवार विशेष रूप से पिताजी के साथ वर्षा की अनबन, पढ—लिखकर अपने करिअर को सफल बनाने की चाह रखनेवाली वर्षा का अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करना आदि घटनाओं पर उपन्यास में काफी प्रकाश डाला है। अपना अस्तित्व स्थापित करने के लिए तथा करिअर को सफल बनाने हेतु वर्षा घर छोडकर शहर चली जाती है। अकेलेपन की समस्या से पीडित वर्षा फिल्मी दुनिया में प्रवेश करती है। अपनी पीडा से छुटकारा पाने लिए हर्ष की बाहों में सुकुन महसूस करती है। अति महत्वकांक्षी हर्ष जीवन में सफलता न मिलने के कारण नशा के अधीन होता है। 'स्व' अस्तित्व के प्रति चेतित मनुष्य मृत्युबोध की अनुभूति तीव्रता से करता है। और इसीबात को लेखक ने प्रभावी ढंग से चित्रित किया है। इसीलिए अस्तित्ववादी चिंतन में मृत्युबोध पर अधिक व्यापक चिंतन दिखायी देता है। यह व्यक्ति चेतना परिस्थिति जीवन के प्रति व्यर्थता एवं आत्मनिर्वासन की भावनिक अवस्थाओं से गुजरते मृत्युबोध की चरससीमा तक पहुँचती है। इसके त्रासदी से आतंकित होती है। मृत्युबोध की त्रासदी से पीडित हर्ष और वर्षा के बीच संबंध स्थापित होते है। इन सारी बातों को लांघकर हर्ष से वर्षा कुंवारी मॉ बन जाती है। बच्चे को जन्म देती है। एक ब्राम्हण परिवार की लडकी है, परिवार परंपरावादी है कितु वर्षा के संघर्ष का उसका अस्तित्ववाद का दर्शन बहुत ही बारिकी से सुरेंद्र

वर्मा ने स्पष्ट किया है। अस्तित्व, अकेलापन, मृत्युबोध, पारिवारिक संघर्ष की भावना इस उपन्यास में चरम सीमा पर है।

सुरेंद्र वर्मा का'दो मुर्दो के लिए गुलदस्ता' उपन्यास भौतिक सुख के बढते प्रभाव को स्पष्ट करते हुए मनुष्य जीवन की खतरे की स्थिति को प्रस्तुत करता है। उपन्यास का प्रमुख पात्र—नील मानसिक द्वंद्व से पीडित है। किरन के प्रेम में पागल नील के जीवन की दिशा ही बदल जाती है। दिशाहीन नील आखिर गॉव छोडकर नौकरी हेतु मुंबई चला जाता है और भौतिक सुखों के प्रति आकर्षित होता है। अत:कम समय में अधिक धन कमाने हेतु 'पुरूष वेश्या' बनता है। मूल्य विघटन विरोधी संघर्ष विचार उसे उसकी मॉ और शिक्षा से दूर ले जाता है। इस दौरान हर्ष की विवशता आज के अस्तित्ववाद का दर्शन कराती है । सबकुछ होते हुए भी उसका अकेलापन वर्तमान मनुष्य जीवन की एक सच्ची कहानी है। मानवी मूल्य एवं उससे बने मानवीयता के विचारों से नील कीर्केगार्ड एवं फ्रेडरिक नीत्शे का समर्थक बन जाता है। नील के साथ इस उपन्यास के अन्य पात्र भी जैसे कुमुद, यास्मिन,पारूल यह उन्मुक्त जीवन के प्रति आकर्षित हैं। नील का अकेलापन कुछ हद तक सामाजिक वातावरण है और कुछ हद तक उसके मनोविज्ञान का परिणाम भी लगता है। अत: नौकरी हेतु शहर आया उच्चशिक्षित नील'पुरूष वेश्या' बनकर एक जिंदा लाश बनकर रह जाता है। प्रश्न एक उपस्थित होता है कि पढा—लिखा नील यह रास्ता क्यों चुनता है?

चंद्रकांता का'अपने—अपने कोणार्क' यह अलग ढंग का उपन्यास है, जो मनुष्य के मन में अस्तित्ववाद के विचार पनपने की प्रक्रिया को दर्शाता है। पढी—लिखी कुनी को आर्थिक स्वावलंबन ने उन्नति के दरवाजे तो खोल दिए किंतु साथ ही अनेक समस्याओं का उपहार भी दिया। दहेज के कारण कुनी की शादी नहीं हो पाती। और यही कारण है कि हमेशा घरवाले तथा बाहर के लोगों के भी ताने सुनने पडते है। बुरी तीखी, वासना से भरी नजरों का अनेक बार कुनी को सामना करना पडता है। लेकिन किस—किसकी शिकायत करेगी? भीतर कितनी बार आग की लपेट की तरह नफरत का भभका भी उठता पर वह खुद को संभालती है,''मैं कुनी, तीस पार की कुंवारी लडकी, जिसके भरे—पूरे जिस्म पर भूखी ललचाई नजरें कोई भी नायब मौका छोडने को तैयार नहीं। किस—किसकी शिकायत करती? दोष मेरी उम्र में इतना नहीं, जितना कुंवारी होने

में था।''२ छोटे भाई—बहन का घर बसा लेकिन कुनी? अकेलेपन के एहसास ने उसे आहत कर दिया। पूरे उपन्यास पर उसका एक अनजान—सा डर छाया हुआ है। उसकी मानसिक स्थिति अलग—अलग अवस्थाओं से गुजरकर अपने अस्तित्व के पहचान की ओर जाती है। उसका संघर्ष,उसका दवंदवं हर बार दिखायी देता है, और यही बात है कि पाठकों का ध्यान आकर्षित कर लेता है।

अस्तित्ववादी चिंतन आधुनिक युगीन जीवन के यांत्रिक, भौतिक एवं अस्थिर परिस्थितियों को जिम्मेदार मानता है। मनोविज्ञान के सूक्ष्म निरीक्षण एवं अध्ययन को आधार बनाता है। जीवन मृत्यु के फासले को पूरब और पश्चिम के सांस्कृतिक, वैचारिक द्विधा के सहारे अचूक रुप में दर्शाता है। पाश्चात्य दर्शन के अनुसार मृत्यु जीवन का खंडन नहीं है अनिवार्य तथ्य है।''मृत्यु से वैयक्तिक अस्तित्व की संभावनाएँ बुझ जाती हैं खत्म नहीं हो जाती।''३ व्यर्थ ही मनुष्य उससे संत्रस्त रहकर जीवन में खालीपन और घुटन महसूस करता है। निर्मल वर्मा, सुरेंद्र वर्मा, मैत्रेयी पुष्पा, श्रीलाल शुक्ल, विनोदकुमार शुक्ल, वीरेंद्र सक्सेना, राजकृष्ण मिश्र,प्रतिभा जैन, प्रभा खेतान जैसे उपन्यासकारों के उपन्यासों में युवा पीढी की सामाजिक असहायता का वर्णन है और उसकी मानसिक स्थिति का चित्रण मिलता है।

अस्तित्ववादी चिंतन मानता है कि अत्याधिक तनाव के कारण मनुष्य अकेलापन महसूस करता है। और इसी मानसिकता के कारण जीवन उसे निरर्थक लगता है। यह व्यर्थता उसमें आत्मनिर्वासन की भावना को भी पैदा करती है, जो अस्तिव सूरक्षा के लिए बाधक बनती है। मृदुला गर्ग की स्मिता या अपने—अपने कोणार्क की कुनी हो अकेलेपन के तनाव में घिरी यह नायिका जीवन के प्रति व्यर्थता का दृष्टिकोण पालने लगती है। जीवन के प्रति देखने का उसका दृष्टिकोण बदल जाता है।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि अस्तित्ववाद से प्रभावित प्रस्तुत उपन्यासों में मानवीय स्थितियों का गहरा चिंतन है। लेकिन इस सच को नकारा भी नहीं जा सकता कि उन स्थितियों से ऊपर उठने का जीवनबोध कम मिलता है। मानव मन की अनकही, वास्तव, अनुभूति का चित्रण इन उपन्यासों को अस्तित्ववादी चिंतन की कोटि में रखता है। अत: अस्तित्ववाद समग्र मानवजाति का दर्शन है। बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों में इसका चिंतन वर्तमान साहित्य की

मॉग है। उत्तरोत्तर यह मॉग बढ रही है और उसका चिंतन भी अधिकाधिक गहरा होता जा रहा है। यह निश्चित है कि उस गहराई को नापने की क्षमता अंतिम दशक के उपन्यासों में है।

संदर्भ ग्रंथ—

१. श्याम सुंदर मिश्र — अस्तित्वाद और साहित्य, पृ. २७

२. चंद्रकांता — अपने—अपने कोणार्क,पृ. ७१

३. शांतिस्वरूप गुप्त — पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत,पृ. २५८